RNI No.: RAJBIL/2013/54153

ISSN : 2322-0074

अलख दृष्टि

ALAKH DRISHTI

(भाषा, दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं मानविकी की संवाहिका त्रैमासिक शोध पत्रिका)

वर्ष-4 • अंक-04 • त्रैमासिक • अक्टूबर-दिसम्बर 2016

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ सं.
01.	21वीं शताब्दी और जैन धर्म : आधुनिक अभियान्त्रिकी एवं विश्वशान्ति के परिप्रेक्ष्य में	प्रो. कमलेश कुमार जैन	06-09
02.	माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की जिज्ञासा प्रवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ वन्दना अरोड़ा, प्रो. लोकमान्य मिश्र	10-15
03.	परम्परा से आधुनिकता की ओर-भारतीय परिदृश्य	डॉ. पुष्पा मिश्रा	16-18
04.	मानव शरीर की जलतत्त्व चिकित्सा	श्रीमति वीनोद सियाग	19-23
05.	भगवद् गीता में आत्मा और मोक्ष	प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी	24-29
06.	कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र-भारतीय राजनीति का मेरूदण्ड	भारती कंवर	30-33
07.	शुद्धवाचन में उच्चारण शिक्षण की भूमिका	डॉ. वीरेन्द्र जैन	34-37
08.	जैन परम्परा में ऋद्धि-सिद्धि	मनोज कुमार टाक	38-44
09.	Contribution of householders in shaping Buddhist Ideology : Traditional and Contemporary	Prof. Pradyumna Dubey	45-52
10.	Jain Prayer and Āvaśyakasūtra	Dr. Pradyumna Shah Singh	53-57
11.	पुस्तक समीक्षा	शिवनाथ मिश्र	58

भगवद् गीता में आत्मा और मोक्ष

प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी

गीता एक ऐसा आध्यात्मिक ग्रन्थ है जिसमें आत्मा, ईश्वर, पाप, पुण्य, कर्म, निष्काम कर्म, मोक्ष आदि का विस्तृत विवेचन मिलता है। यहाँ कर्त्तव्य पथ से च्युत अर्जुन को भगवान कृष्ण मोह छोड़कर कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होने की शिक्षा देते हैं। गीता की यह शिक्षा मात्र अर्जुन के लिए ही नहीं है और न ही मात्र उस युग के उस क्षण के लिए ही है जिस क्षण अर्जुन को व्यामोह हुआ था। यह शिक्षा सभी युगों के सभी कर्त्तव्यच्युत लोगों के लिए है। इसे सनातन शिक्षा कहा जाना अधिक प्रासंगिक है। आज भी जो सैनिक मोहवश युद्धभूमि से पलायन कर जाते हैं, जो व्यापारी, डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक एवं किसान अपने-अपने कर्त्तव्य से किसी कारण से विमुख होते हैं, उन सबके लिए गीता का यह ज्ञान आवश्यक है। वे भौतिकवादी लोग जो चार्वाक दर्शन एवं वर्तमान भौतिक प्रवृत्तियों से इतने प्रभावित हो जाते हैं कि उन्हें इस जीवन के सिवाय कुछ दिखता ही नहीं। जो यह मान बैठते हैं कि बड़े भाग्य से यह मानव शरीर मिला है जो फिर कभी मिलने वाला नहीं है। अतः इस शरीर से जितना भोग उपभोग कर सकते हैं, अधिक से अधिक करना चाहिए। क्योंकि शरीर और भोग के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। ऐसे लोगों के लिए शरीर ही सब कुछ है, आत्मा कुछ भी नहीं है। चार्वक दर्शन का मूल सिद्धान्त ही था कि "जब तक जीओ, सुख से जीओ और कर्ज लेकर घी पीओ। शरीर के नष्ट हो जाने पर कुछ शेष नहीं रहता है, अतः पुनर्जन्म बकवास है।"

ऐसे भौतिकवादी प्रवृत्तियों में निमज्जित लोगों के लिए गीता जिस आत्मवाद की शिक्षा देती है उससे उन्हें सन्मार्ग पर आने की प्रेरणा मिलती है कि शरीर नश्वर है। शरीर के प्रति आसक्ति नहीं होनी चाहिए। अन्यथा राजा त्रिशंकु की दुर्गति होगी। राजा त्रिशंकु को अपने शरीर के अंग-प्रत्यंगों पर बहुत अभिमान था। वे अपने अंग-प्रत्यंगों के साथ स्वर्ग जाना चाहते थे। हठ भी किया। उनके इस हठ में विश्वामित्र ने साथ दिया और सशरीर स्वर्ग भेजने की कोशिश की किन्तु वे सफल नहीं हुए और राजा त्रिशंकु बीच में अटक गये। इन्द्र ने उन्हें ऊपर नहीं आने दिया और विश्वामित्र ने उन्हें नीचे नहीं गिरने दिया। अतः त्रिशंकु की स्थिति से बचना चाहिए और शरीर के प्रति ममत्व नहीं रखना चाहिए। शरीर

उत्पन्न होता है। जो उत्पन्न होता है, वह मरता भी है। किन्तु भारतीय चिन्तन परम्परा में जो उत्पत्ति एवं विनाश से परे है, वह आत्मा है। गीता में आत्मा की अवधारणा का महत्वपूर्ण स्थान है। गीता में एक तरफ कुलधर्म है तो दूसरी तरफ वर्णधर्म है। कुलधर्म तो कुल की रक्षा की बात करता है तो वर्ण धर्म अपने वर्ण के अनुसार कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। इन्हीं दोनों धर्मों के द्वन्द्व के बीच अर्जुन कर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। उसे कर्त्तव्य मार्ग पर लाने के लिए जहाँ भगवान कृष्ण उसे ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग, भक्ति मार्ग आदि की शिक्षा देते हैं, वहीं आत्मवाद की भी शिक्षा देते हैं। यहाँ अर्जुन को बताया गया कि आत्मा नित्य है। एक राजा के मारे जाने पर ऐसा नहीं होगा कि राजा का नामोनिशान मिट जायेगा। राजा पहले भी थे, आज भी हैं और भविष्य में भी रहेंगे।

"नत्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।।"[1]

अर्थात आत्मा नित्य है, इसलिए शोक करना ठीक नहीं है। वास्तव में न तो ऐसा ही है कि मैं किसी काल में नहीं था अथवा तू नहीं था। अथवा यह राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे। सार यह है कि आत्मा नित्य है। अमुक-अमुक के मरने पर भी उस पर कोई असर नहीं पड़ता है।

आत्मा शाश्वत है- गीता के अनुसार आत्मा शाश्वत है। यह किसी से उत्पन्न नहीं है क्योंकि जो उत्पन्न होता है, वह नष्ट भी होता है। अतः आत्मा सनातन है। गीता के अनुसार-

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।[2]

अर्थात यह आत्मा किसी काल में न जन्मता है और न मरता है। न ऐसा है कि यह अभी है और फिर कभी नहीं रहेगा। यह तो अजन्मा (कभी न उत्पन्न होने वाला), नित्य (हर दिन), शाश्वत (हर काल में) एवं पुरातन (सबसे प्राचीन) है। शरीर के विनाश होने पर भी इसका नाम नहीं होता है।

जैसे शरीर पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्र धारण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को छोड़कर दूसरे नये शरीर को प्राप्त होता है। अर्थात आत्मा नित्य है। इसी के कारण व्यक्ति का आवागमन जन्म-जन्मान्तरण तक बना रहता है। अतः अर्जुन निश्चिन्त होकर युद्ध करो क्योंकि यदि यह शरीर नष्ट हुआ तो आत्मा दूसरे शरीर में तुम्हें जीवित रखेगी। यही बात तुम्हारे सगे-सम्बन्धियों पर भी लागू होती है। जिन पर तू बाण नहीं चलाना चाहता और कर्त्तव्य पथ से विमुख होना चाहता है तो तुझे यह ध्यान करना चाहिए कि तू अपने सगे-सम्बन्धियों को कभी मार नहीं सकता क्योंकि इनकी आत्मा नित्य है फिर क्यों तू कर्त्तव्य न करने का दोषी बनता है। कहा भी गया है-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृहणाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।[3]

अतः यह स्पष्ट होता है कि जन्म-जन्मान्तर में आत्मा ही है। छान्दोग्योपनिषद में भी कहा गया है कि आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है। आत्मा ही पीछे है, आत्मा ही आगे है, आत्मा ही दांयी ओर है। आत्मा ही बांयी ओर है और आत्मा ही सब कुछ है।[4]

आत्मा का स्वरूप

गीता में कहा गया है कि यह आत्मा अविनाशी है और इसी से यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है। उस अव्यय आत्मा का कोई विनाश नहीं कर सकता-

"अविनाशि तु तद्वि द्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।।[5]

उपनिषदों में भी बताया गया है कि आत्मा से भिन्न अथवा बाह्य कोई सत्ता नहीं है। समस्त सृष्टि का मूल आत्मा ही है। आत्मा के अतिरिक्त सब कुछ मिथ्या है। भ्रम है। आत्मा के किसी रूप का ज्ञान उसके पूर्ण रूप का ज्ञान है। आत्मा ही एक मात्र ज्ञाता है। वह सब कुछ जानता है किन्तु वह प्रमाणातीत है-

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत।।"[6]

अर्थात इस नाशरहित अप्रमेय। नित्य स्वरूप जीवात्मा के यह शरीर नाशवान कहे गये हैं। इसलिए हे, भारतवंशी अर्जुन! सभी प्रकार के व्यामोह छोड़कर युद्ध करो।

छान्दोग्योपनिषद में वर्णित है कि एक बार प्रजापति ने कहा जो आत्मा पापशून्य, जरारहित, मृत्युहीन, विशोक,

क्षुधारहित, पिपासारहित, सत्यकाम और सत्य संकल्प है उसे खोजना चाहिए। जो उस आत्मा को प्राप्त कर लेता है वह सम्पूर्ण लोक और समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।[7] प्रजापति के मुख से यह सुन देवताओं और दानवों ने उपयोगी आत्मज्ञान को प्राप्त करने के लिए इन्द्र और विरोचन को अपने-अपने प्रतिनिधि के रूप में भेजा। प्रजापति ने दोनों को एक पात्र में स्वच्छ जल रखकर अपने स्वरूप को देखने के लिए कहा। दोनों ने जल में अपने-अपने स्वरूप भलीभांति देखकर जब प्रजापति को बताया तो उन्होंने कहा- यह तो जो पुरुष नेत्रों में दिखाई देता है, यह आत्मा है, अमृत है, यह अभय है, यह ब्रह्म हैं। आत्मा के बारे में यह जानकर दोनों चले गये। विरोचन शांति चित्त से असुरों के पास पहुंचकर आत्मविद्या के बारे में बताया कि इस लोक में शरीर ही पूजनीय है और शरीर ही सेवनीय है। परन्तु इन्द्र ने देवताओं के पास जाकर प्रजापति के पास लौट आये और पूछा यदि बाह्य स्वरूप ही आत्मतत्त्व है तो शरीर के स्वच्छ होने से यह भी स्वच्छ हो जायेगा। आपके इस ज्ञान से मुझे संतोष नहीं है। प्रजापति ने पुनः उन्हें उपदेश दिया कि जो स्वप्न देखता है, वह आत्मा है। इस पर जब भी इन्द्र ने असहमति व्यक्त की तो प्रजापति ने कहा- जब कोई मनुष्य पूर्ण तुष्ट होकर प्रगाढ़ निद्रा में सोया रहता है, जब उसे कोई स्वप्न दिखाई नहीं देखा है, उस स्थिति में मृत्यु और भय से रहित जो चेतना है वही आत्मा है, वही ब्रह्म है। इस पर भी जब इन्द्र सन्तुष्ट नहीं हुए तो प्रजापत ने इन्द्र को अन्तिम सत्य के रूप में आत्मा के जिस रूप को प्रतिपादित किया था,उस रूप में आत्मा अशरीरी है, सूक्ष्म है और शरीर से समुत्थान कर परमज्योति को प्राप्त हो अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है।[8] गीता में भी कहा गया है-

"वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्।।"[9]

अर्थात हे अर्जुन! जो पुरुष इस आत्मा को अविनाशी, नित्य अजन्मा एवं अव्यय मानता है। वह न ही किसी को मरवा सकता है और न किसी को मार सकता है क्योंकि उसे पता है कि किसी भी स्थिति में आत्मा का समूल विनाश नहीं किया जा सकता। आत्मा अशरीर होने के कारण ही अविनाशी है। आगे गीता यह भी कहती है-

"नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैंन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।[10]

अर्थात आत्मा को शास्त्रादि से काटा नहीं जा सकता। इसे अग्नि जला भी नहीं सकती। इसे पानी गीला नहीं कर सकता तथा हवा इसे सुखा भी नहीं सकती है। ऐसा इसलिए नहीं हो सकता क्योंकि-

"अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुचलोऽयं सनातनः।।[11]

अर्थात यह आत्मा काटा नहीं जा सकता, इसे जलाया नहीं जा सकता, इसे गलाया भी नहीं जा सकता तथा इसे सुखाया भी नहीं जा सकता। यह नित्य है अर्थात् कभी नष्ट होने वाला नहीं है, सर्वव्यापक है अर्थात सर्वत्र है, अचल, सुस्थिर एवं सनातन है। यही आत्मा का स्वरूप है।

आत्मा के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए गीता आगे कहती है-

"अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि।।"[12]

अर्थात यह आत्मा अव्यक्त अर्थात इन्द्रियों के द्वारा इसे व्यक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि यह रूप नहीं है कि नेत्रेन्द्रिय द्वारा देखा जा सके, यह रस भी नहीं जिसका स्वाद रसनेन्द्रिय (जिह्वा) द्वारा लिया जा सके, यह कोई गन्ध नहीं जिसे घ्राणोन्द्रिय द्वारा सूंघा जा सके। यह कोई स्पर्श नहीं है जिसे त्वचा के द्वारा छूआ जा सके और न ही यह शब्द है जिसे कान के द्वारा सुना जा सके, अतः यह किसी इन्द्रिय के द्वारा न जानने के कारण अव्यक्त है। आत्मा अचिन्त्य है अर्थात् आन्तरिक इन्द्रिय मन के द्वारा भी इसका मनन एवं चिन्तन नहीं हो सकता। यह अविकारी है अर्थात इसमें कोई बदलाव नहीं लाया जा सकता, इसे किसी के द्वारा विकृत नहीं किया जा सकता। अतः हे अर्जुन! आत्मा के वास्तविक स्वरूप को समझकर तुझे शोक नहीं करना चाहिए अर्थात तुझे शोक करना उचित नहीं है।

आत्मा-शरीर सम्बन्ध : गीता के अनुसार शरीर को मारा जा सकता है क्योंकि यह मारने योग्य है, मारने योग्य इसलिए है क्योंकि यह सावयव है। यह सावयव है क्योंकि

यह उत्पन्न होता है, जो उत्पन्न होता है वह किसी न किसी आकार में उत्पन्न होता है। जो उत्पन्न होता है वह नष्ट भी होता है, जिसे आकार मिला है, वह आकार एक न एक दिन क्षीण होगा। कहा भी गया है-

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।[13]

अर्थात जो उत्पन्न हुआ है उनका मरना निश्चित है और जो मरता है उसका उत्पन्न होना निश्चित है। इसलिए जिस चीज को टाला नहीं जा सकता, उसके विषय में शोक करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है।

जब देह मरता है, देही आत्मा कभी नहीं मरता तब प्रश्न उठता है कि यदि शरीर मरण धर्म है और आत्मा अमर्त्य है फिर इन दोनों में सम्बन्ध कैसे होता है? वस्तुतः शरीर और आत्मा के परस्पर सम्बन्ध का यह प्रश्न बहुत जटिल है। जिन्होंने भी इस सम्बध पर विचार किया उन्हें कोई युक्तियुक्त समाधान नहीं मिला अपितु उन्होंने इसे एक आश्चर्य ही माना। जिन्होंने इस तत्त्व का उपदेश दिया उन्होंने भी इसे एक आश्चर्य के रूप में व्याख्यायित किया। सुनने वालों ने भी इसे एक आश्चर्य माना। कोई इसे जान नहीं पाया-

"आश्चर्यवत पश्यति कश्चिदेनम्, आश्चर्यवद् वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति, श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित।।"[14]

अर्थात हे अर्जुन! यह आत्म तत्त्व बड़ा गहन है, इसलिए कोई महापुरुष ही इस आत्मा को आश्चर्यपूर्वक देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही आश्चर्यपूर्वक इसके तत्त्व को कहता है, कोई आश्चर्य की तरह इसे सुनता है कोई-कोई सुनकर भी इसे जान नहीं पाता।

आगे गीता कहती है कि शरीर में रहने वाली आत्मा का कभी बध नहीं किया जा सकता। जब कोई किसी को मार ही नहीं सकता। तुम क्यों अपने कर्म अर्थात युद्ध करने से पलायन कर रहे हो। गीता में कहा गया है-

"देही नित्यम वध्योऽयं देहे सर्वस्व भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।।"[15]

अतः यह स्पष्ट है कि आत्मा और शरीर का सम्बन्ध होता है किन्तु आत्मा चेतन है तो शरीर अचेतन, आत्मा निरवयव है तथा शरीर सरवयव है, आत्मा नित्य है तो शरीर अनित्य है, आत्मा अव्यक्त है तो शरीर व्यक्त है, आत्मा अचिन्त्य है तो शरीर चिन्त्य है, आत्मा अजर- अमर है तो शरीर उत्पन्न भी होता है, मरता भी है, आत्मा अव्यय है तो शरीर व्यय है। आत्मा अबध्य है तो शरीर बध्य है।

मोक्ष विचार - गीता में मोक्ष विचार अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होता है, यथा परमात्मा में स्थित होना, दैवीसम्पदा को प्राप्त करना, आत्मा-परमात्मा की अद्वैतता, बौद्धों की भांति कर्म हीन निर्वाण, स्थितप्रज्ञता, आवागमन के बन्धन से मुक्त होकर परमधाम अथवा परमगति की उपलब्धि आदि। यहां मोक्ष को ही परमसिद्धि कहा गया है। गीता के अनुसार जो ब्रह्म में लीन हैं, वे मुक्त हैं। जिनका मन और बुद्धि ब्रह्म में लीन है, जो ब्रह्मनिष्ठ और ब्रह्म परायण हैं वे ज्ञान के द्वारा अपने पापों को छोड़कर उस परम गति को प्राप्त कर लेते हैं। जहां से पुनः वापिस नहीं होना पड़ता है-

"तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः।।[16]

गीता में आगे कहा गया है कि वह योगी जो अन्दर रमण करता है और अन्दर सुख पाता है तथा जिसके अन्दर ही प्रकाश है, स्वयं ब्रह्म बनकर शान्त ब्रह्म को उपलब्ध करता है-

"योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरे व यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधि गच्छति।।"[17]

मुक्ति प्राप्त के अन्य लक्षण बतलाते हुए गीता में कहा गया है-

'लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मलुः।
छिन्न द्वैधा यतात्मानः सर्वभूताहितेरताः।।[18]

अर्थात जिनके पाप क्षीण हो गये, जिनकी सब दुबिधा मिट गयी तथा जो सब प्राणियों के हित में रहा है ऐसे संयत आत्मा वाले ऋषि शान्त ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

आगे उल्लेख है-

"कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्।।"[19]

अर्थात जिन्होंने काम- क्रोध से अपने को अलग कर लिया है, चित्त पर विजय प्राप्त कर ली है, ऐसे आत्मतत्त्व के ज्ञाता यतियो के चारों ओर शान्त ब्रह्म ही है।

प्रायः यह माना जाता है कि शरीर के छूटने पर ही मोक्ष प्राप्त होता है। आचार्य रामानुज की यही मान्यता है। वे केवल विदेह मुक्ति को मानते हैं। वैसे दर्शन जगत में जीवन्मुक्ति भी मानी जाती है, जो शरीर रहते हुए भी होती हैं। गीता दर्शन का विश्वास जीवन्-मुक्ति में भी है। कृष्ण कहते हैं कि शरीर के छूटने से पहले ही इस संसार में रहते हुए भी मनुष्य सुखी रह सकता है। यदि वह काम ओर क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेग को रोक सके। कहा भी गया है-

"शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीर विमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः।।"[20]

अर्थात जो मनुष्य शरीर के नाश होने से पहले ही काम और क्रोध से उत्पन्न हुए वेग को सहन करने में समर्थ है अर्थात काम-क्रोध को जिसने सदा के लिए जीत लिया है, वह मनुष्य इस लोक में योगी है और वही सुखी है। प्रो. दयानन्द भार्गव कहते हैं कि काम एक शक्ति है। काम का अर्थ है- यह आशा करना कि सुख कहीं बाहर से आये। यही कामना है। इस कामना के दो विकल्प है- या तो पूरी हो जाती है या यह पूरी नहीं होती है। पूरी हो जाती है तो व्यक्ति शक्तिहीन सा हो जाता है और यदि पूरी नहीं होती है तो क्रोध का जन्म होता है। अभिप्रायः यह है कि कामना का पूरी होना और न होना दोनों ही अनर्थकारी है।[21]

गीता कहती है कि काम और क्रोध का एक वेग है। हम सब जानते हैं कि जहां वेग होता है वहां शक्ति रहती है। इस शक्ति का बहिर्मुख हो जाना काम है और अन्तर्मुख हो जाना राम है। जब यह शक्ति बाहर सुख ढूंढती है और जिस सुख को वह ढूंढती है वह सुख इसे नहीं मिल पाता तो स्वाभाविक है कि यह शक्ति क्रोध में बदल जाती है। और यदि वही सुख मिल जाये तो वह सुख इतना नीरस सिद्ध होता है कि व्यक्ति अवसाद में डूब जाता है। कारण स्पष्ट है कि सुख बाहर है ही नहीं तो मिलेगा कैसे? तब उपाय यह है कि सुख अन्दर ढूंढा जाये।

जो सुख अन्दर ढूंढ़ते है उनकी भक्ति अन्तर्मुखी हो जाती है। अन्दर सुख है और ऐसे व्यक्ति को कभी निराशा नहीं होती है। श्री कृष्ण कहते हैं कि जो अन्दर सुख को पाता है, अन्तरात्मा में ही रमण करता है, अन्दर ही ज्योति का दर्शन करता है, वह ब्रह्मरूप बनकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

गीता में शरीर के चक्र और श्वास की गति को आधार बनाकर श्रीकृष्ण अर्जुन को ध्यान की वह प्रक्रिया बताते हैं कि जिस प्रक्रिया से साधक इन्द्रिय, मन और बुद्धि पर नियन्त्रण पा जाता है तथा इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो जाता है। वे कहते हैं कि इन्द्रियों के बाह्य विषयों को बाहर ही छोड़कर दोनों आंखों के बीच के स्थान पर (आज्ञाचक्र) चित्त को लगाकर तथा नासिका के भीतर चलने वाले प्राण और अपान को सम बनाकर जो मोक्ष में तत्पर मुनि इन्द्रिय, मन और बुद्धि पर नियन्त्रण कर लेते है और इच्छा, भय तथा क्रोध से रहित हो जाता है वह सदा मुक्त ही है-

'स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौकृत्वा नासाभ्यान्तरचारिणौ।।
यतेन्द्रिय मनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्ष परायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधौ यः सदा मुक्त एव स।।"[22]

मोक्ष के स्वरूप के सम्बन्ध में गीता में वर्णित निम्न श्लोक भी मोक्ष की महिमा का गुणगान करते हैं-

"इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोष हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः।।[23]

अर्थात जिनका मन समत्वभाव में स्थित है उनके द्वारा इस जीवित अवस्था में ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया अर्थात वे जीते हुए ही संसार से मुक्त है, क्योंकि साच्चिदानन्दधन परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दधन परमात्मा में ही स्थित है। गीता कहती है-

"न प्रहुष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः।।"[24]

अर्थात जो पुरुष प्रिय को अर्थात जिसको लोग प्रिय समझते हैं, उसको प्राप्त कर हर्षित नहीं हो और अप्रिय को अर्थात जिसको लोग अप्रिय अर्थात प्रतिकूल समझते हैं, उसको प्राप्त कर दुःखी या उद्वेगवान नहीं, ऐसा स्थिरबुद्धि, संशय रहित, ब्रह्मवेत्ता पुरुष साच्चिदानन्दनधन पर ब्रह्म परमात्मा में एकीभाव से नित्यस्थित है।

अन्यत्र भी कहा गया है-

"बाह्यस्पर्शेष्व सक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुरवम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते।।"[25]

अर्थात बाहर के विषयों में अर्थात सांसारिक भोगों में आसक्तिरहित अन्तः करण वाला पुरुष अन्तःकरण में जो भगवत् ध्यान जनित आनन्द है, उसको प्राप्त होता है और वह पुरूष साच्चिदानदधन पर ब्रह्म परामात्मरूप योग में एकी भाव से स्थित हुआ अक्षय आनन्द को अनुभव करता है।

गीता के अनुसार–

"भोक्तारं यज्ञ तपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदसर्वभूतानां ज्ञात्वां मां शान्तिमृच्छति।।"[26]

अर्थात मुझे यज्ञ और तप का भोक्ता, सब लोगों का महेश्वर तथा सब प्राणियों का मित्र ज़ानकर व्यक्ति शांति को प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि गीता में आत्मा को केन्द्र में रखकर ही समस्त चिन्तन किया गया है। कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया जाने वाला सन्देश भी आत्म ज्ञान का सूचक है। यहां आत्मा को नित्य, अव्यक्त, अचिन्त्य, पुरातन, अजर, अमर माना गया है। काम-क्रोध एवं राग-द्वेष से मुक्त आत्मा जीवनकाल में भी मुक्त होती है, जिसका यहां स्पष्ट उल्लेख है। अर्थात गीता दर्शन में जीवन्मुक्ति एवं विदेह मुक्ति दोनों को स्वीकार किया गया है। मोक्ष के साधन के रूप में कृष्ण स्वयं कहते हैं कि मनुष्य के कल्याण के लिए मैंने तीन मार्ग बतलाये हैं- ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग एवं भक्ति मार्ग। अन्ततः भक्त को भगवान में समर्पित होने की प्रेरणा यहां दी गयी है। अर्थात जो अपना सर्वस्व भगवान में समर्पित कर देता है, वह मुक्त हो जाता है।

संदर्भ सूची -

1. भगवद्गीता, 2/12
2. वहीं, 2/20
3. वहीं, 2/22
4. छान्दोग्योपनिषद, 7/24/25
5. गीता, 2/17
6. वही, 2/18
7. छन्दोग्योपनिषद्, 8/7/1
8. वही, 8/12/1
9. गीता, 2/21
10. वही, 2/23
11. वही, 2/24
12. वही, 2/25
13. वही, 2/27
14. वही, 2/29
15. वही, 2/30
16. वही, 5/17
17. वही, 5/24
18. वही, 5/25
19. वही, 5/26
20. वही, 5/23
21. विपुलभाष्य, पृ. 150
22. गीता, 5/27-28
23. वही, 5/19
24. वही, 5/20
25. वही, 5/21
26. वही, 5/29

निदेशक
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
जैन विश्व भारती संस्थान
लाडनूं - 341306 (राज.)